इकाई–5 भारतीय प्रशासन : सामान्य परिचय

अध्याय – 12
कौटिल्य के प्रशासनिक विचार
(Administrative Ideas of Kautilya)

आचार्य कौटिल्य का व्यक्तित्व :

आचार्य कौटिल्य को प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन एव प्रशासनिक विचारधारा की परम्परा में अग्रणीय चिंतक माना जाता है। कौटिल्य द्वरा आज से 2300 वर्ष पूर्व रचित अर्थशास्त्र को विश्व के राजनीति दर्शन एव कूटनीति पर लिखी गई विविध कृतियों में श्रेष्ठतम स्थान प्रदान किया गया है। कुछ विद्वानों ने कौटिल्य को भारतीय राजनीति का मैकियावली भी कहा है, जबकि तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कौटिल्य अपने विचारों व कृतित्व में मैकियावली से कही आगे और वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भी प्रासंगिकता बनाये हुए है।

कौटिल्य का जीवन परिचय :

विभिन्न संस्कृत ग्रथों एव प्रचारित किवदंतियों के अनुसार ये प्रमााण मिलते हैं कि कौटिल्य को चाणक्य एवं विष्णुगुप्त के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। चणक के पुत्र होने के कारण उन्हे चाणक्य कहा जाता है तथा प्रसिद्व विद्वान टी. गणपतिशास्त्री के मतानुसार कौटल गौत्र में उत्पन्न होने के कारण उन्हे कौटिल्य नाम से भी पुकारा जाता है। आचार्य कौटिल्य ब्राह्मण कुल में पैदा हुए तथा उनका वास्तविक पितृ प्रदत्त नाम विष्णुगुप्त था। कौटिल्य का समय तीसरी से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व या 323 ईसा पूर्व के लगभग माना गया है। भारतीय इतिहास की प्रमाणिक तिथि क्रमानुसार कौटिल्य सिकन्दर, ग्रीक विद्वान अरस्तु एवं महान मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समकालीन थे। कौटिल्य का जन्म स्थान कुछ विद्वानों ने तक्षशिला तथा कुछ विद्वानों नें मगध जनपद को माना है। कौटिल्य की शिक्षा नालन्दा विश्वविद्यालय में हुई, तथा अपना अध्ययन समाप्त करके वे इसी विश्वविद्यालय में शिक्षक नियुक्त होकर अध्यापन करने लगे। कौटिल्य अपने व्यक्तित्व एवं स्वभाव की प्रकृतिनुसार उग्र, दृढ़ निश्चयी, स्वाभिमानी एवं तीक्ष्ण बुद्धि से युक्त थे। यह सर्वमान्य एवं प्रमाणिक तथ्य है कि अर्थशास्त्र के रचियता आचार्य कौटिल्य ही मौर्य वंश के संस्थापक महान मौर्य सम्राट चन्दगुप्त के गुरु एवं उनके प्रधानमंत्री भी थे।

कौटिल्य की ख्याति के दो मुख्य कारण है : प्रथम यह है कि उन्होने नन्दवंश द्वारा अपना अपमान करने पर बदला लेने हेतु उसे समूल नष्ट करने का प्रण लिया। इस प्रण को चन्दगुप्त मौर्य की सहायता से पूर्ण किया एवं चन्दगुप्त मौर्य को मगध के सिंहासन पर आसीन कर मौर्यवंश की स्थापना की। द्वितीय कारण यह कि उन्होने राजनीति एव प्रशासन की कला पर अर्थशास्त्र जैसे महान एवं यथार्थवादी सिद्वान्तों पर आधारित ग्रंथ की रचना की ।

अर्थशास्त्र के रचयिता व रचनाकाल :

अर्थशास्त्र के रचयिता व रचनाकर के सम्बध में विद्वानों के विचारों में काफी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जहाँ एक और डॉ.काशीप्रसाद जायसवाल, डॉ. शामशास्त्री, श्री गणपति शास्त्री, फ्लीट , स्मिथ इत्यादि विद्वान प्राचीन शास्त्रकारों के तर्को के आधार पर अर्थशास्त्र को मौर्य सम्राट चन्दगुप्त मौर्य के प्रख्यात महामंत्री कौटिल्य की कृति मानते है, वही इसके विपरीत जौलि, विन्टरनीट्ज जैसे पाश्चात्य विद्वान कौटिल्य शब्द को ही मिथ्या मानते है। उनके अनुसार कौटिल्य नामक कोई विचारक अर्थशास्त्र का रचनाकार नहीं है क्योकि मैगस्थनीज ने इस नाम के किसी ग्रंथ एव ग्रंथकार का अपनी पुस्तक इण्डिका में उल्लेख नही किया है, जबकि वह मौर्यकाल में भारत की यात्रा पर आया था।

अर्थशास्त्र के रचयिता के सम्बध में मतभिन्नता के बाद भी इस बात के काफी प्रभाण मिलते है कि अर्थशास्त्र के रचनाकार कौटिल्य ही है। ये प्रमाण निम्नलिखित है –

(1) अर्थशास्त्र के आरम्भ में 'कौटिल्येन कृत शास्त्रम्'', दूसरे अधिकरण में ग्रंथ के रचनाकार के लिए कौटिल्य शब्द का उल्लेख तथा अध्याय के अन्त में '' इति' कौटिलीय अर्थशास्त्र'' शब्द का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि रचनाकार कौटिल्य है।

(2) कामंदक नीतिसार में भी उल्लेख है कि अर्थशास्त्र की रचना कौटिल्य द्वारा की गई है।

(3) पंचतन्त्र के लेखक विष्णुशर्मा ने भी अर्थशास्त्र के रचनाकार को चाणक्य नामक ब्राहमण के रुप में सम्बोधित किया और नमन किया है ।

(4) कवि दण्डी द्वारा लिखित दशकुमार चरित्रम् में यह मत उल्लेख किया गया है कि विष्णु ने मौर्य सम्राटों के हित में छः हजार श्लोक का ग्रंथ लिखा है।

अर्थशास्त्र के रचनाकार विषयक शंकाओं एव भ्रमपूर्ण धारणाओं का निराकरण 1904 में हुआ जब मैसूर के प. आर. शामशास्त्री को इस ग्रथ की मूल कृति की प्राप्ति हुई। सन् 1915 में प. आर. शामशास्त्री ने The Arthashastra of Kautilya के नाम से इसका संशोधित अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाया।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र एक संक्षिप्त परिचय :

कौटिल्य ने सर्वप्रथम राजनीति विज्ञान पर अर्थशास्त्र की रचना की। जो पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रों से रचना सामग्री में व्यापक रुप में भिन्न है। सामान्यतः वर्तमान युग में अर्थशास्त्र शब्द इकोनोमिक्स के अर्थ में प्रस्तुत होता है किंतु प्राचीनकाल में यह चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ का प्रतिनिधित्व

करता था। कौटिल्य की दृष्टि में जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम है। यथार्थवादी चिंतक होने के कारण कौटिल्य ने मोक्ष की चर्चा नही की है।

अर्थशास्त्र के नामकरण के सदर्भ में कौटिल्य कहते है :

'' मनुष्याणां वृत्तिरथः मनुस्यति भूमिरित्यर्थः
तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति । ''

अर्थात् मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते है, मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार भूमि के प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा का सबसे अधिक गूढ़, वैज्ञानिक पद्वति पर आधारित, यथार्थवाद का समर्थन करने वाला विस्तृत ग्रंथ है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक विचारों व संस्थाओं का स्पष्ट व व्यापक विवेचन मिलता है। इस ग्रंथ में राज्य की उत्पत्ति सम्बन्धित सिद्वान्त, शासन पद्वति, राजा की योग्यता, गुण एवं कर्त्तव्य, मंत्री व मंत्रीपरिषद् , उनकी योग्यता, नियुक्ति, राजकीय प्रशासन तंत्र तथा राज्य अधिकरियों के कर्त्तव्य, ग्राम एवं नगर की स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था, न्यायालयों इत्यादि का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक स्थिति, कूटनीति, गुप्तचर व्यवस्था, राष्ट्रीय मूल्यों एवं उन्नति आदि विषयों का सिहावलोकन किया गया है।

विषय सामग्री की दृष्टि से अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आधुनिक अर्थशास्त्र, लोकप्रशासन, समाजशास्त्र, युद्वशास्त्र आदि का समुच्चय माना जाता है। यह उस काल में आधुनिक सामाजिक विज्ञानों के अन्तर अनुशासनिक उपागम को ध्यान में रखकर लिखा गया था। वस्तुतः कौटिल्य का अर्थशास्त्र आज भी इक्कीसवीं सदी के नवीन लोककल्याणकारी वैश्विक राज्य की विशिष्टताओं से युक्त राज्य क दिग्दर्शन है।

कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण, 180 प्रकरण, 150 अध्याय एवं 6000 श्लोक है। अर्थशास्त्र में वर्णित कुल 15 अधिकरणों में से केवल 1,2,5 एवं 6 अधिकरणों का सम्बध लोक प्रशासन विषय से है। इस ग्रंथ के आधे भाग में वैदेशिक नीति एव युद्ध नीति की ही चर्चा की गई है।

राज्य की उत्पत्ति सिद्वान्त :

कौटिल्य ने राज्य को मानव जीवन के लिये एक महत्वपूर्ण आवश्यक एव कल्याणकारी संस्था माना है। उनके राज्य विषयक विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैसे छोटी मछली को बडी मछली खा जाती है वैसे ही बलवान लोगों ने निर्बल लोगों को सताया तो इस मत्स्य न्याय से भयभीत प्रजा ने मिलकर ''वेवस्वत् मनु'' को अपना राजा नियुक्त किया उन्होने राजा को कृषि उपज का छठा भाग, व्यापार की आय का दसवाँ भाग देने का निश्चय किया इस तरह प्रजा कर देने व एक व्यक्ति द्वारा शासित होने को तैयार हो गयी ताकि वे आनन्द पूर्वक रह सके व सुरक्षा पा सके राजा ने प्रजा के कल्याण के दायित्व को अपने ऊपर ले लिया जो लोग राजा द्वारा की गई व्यवस्था को नही मानते थे, उन्हे वह दण्ड देता था। कौटिल्य के अनुसार राज्य (राजा) की आज्ञा का पालन न करना अथवा उसका अपमान करना निषिद्ध है।

''प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजाना च हिते हितम्
नात्म प्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् '' (कौटिल्य)

कौटिल्य ने कहा है की प्रजा के सुख मे राजा का सुख है । प्रजा के हित मे ही उसका हित है। जो कुछ राजा को प्रिय हो वह उसे हित ना समझे बल्कि जो प्रजा को प्रिय हो वह उसे ही अपना हित समझे।

कौटिल्य ने राजा के लिए देवीय सिद्वान्त का समर्थन किया परन्तु उस पर धर्म के नियन्त्रण पर भी बल दिया। वे शासन में राजतंत्र प्रणाली का समर्थन करते थे । राजा के चुनाव की प्रकिया का अर्थशास्त्र में कहीं उल्लेख नही किया गया है। कौटिल्य ने राजतंत्र शासन की कुछ प्रणालियों का उल्लेख किया है।

जैसे : **द्विराज्य प्रणाली** – जिसमें एक ही परिवार के दो व्यक्तियों द्वारा पूरे राज्य पर शासन किया जाता है।

वैराज्य प्रणाली – राज्य पर विदेशी व्यक्ति द्वारा शासन किया जाता है जो उस राज्य के कानूनी शासक को शक्ति के द्वारा हटाकर शासन करता है। कौटिल्य ने इस वैराज्य सरकार प्रणाली का निषेध किया है क्योंकि विदेशी शासक का शासित राज्य (जीते हुयें राज्य) के कल्याण में कोईरुचि नही होती है।

राज्य का सप्तांग सिद्वान्त :

कौटिल्य ने राज्य के अंगो की चर्चा करते हुए अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण में सप्तांग सिद्वान्त की चर्चा की है। राज्य के सप्तांग अर्थात सात अंगो को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. राजा –स्वामी
2. अमात्य–मंत्री
3. जनपद–प्रादेशिक
4. दुर्ग–किला
5. राजकोष–वित्त
6. दण्ड–सेना
7. मित्र–मित्र राज्य

1. राजा या स्वामी : कौटिल्य राजा को राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एव केन्द्रीय अंग मानता है। कौटिल्य का मत है कि राज्य की समस्त शक्तियाँ राजा में निहित होनी चाहिए। उसके अनुसार गुणवान और चरित्रवान, उच्च कुल में उत्पन्न, धार्मिक, दूरदर्शी, सत्यवादी, महत्वाकांक्षी, अथक परिश्रमी, शिक्षा प्रेमी तथा योग्य मंत्रियों से युक्त राजा राज्य को सफलता के शिखर तक पहुँचा सकता है।

2. अमात्य या मत्री : कौटिल्य के अनुसार अमात्य या मंत्री राज्य संचालन के वास्तविक अंग है। उनके मतानुसार राज्य में अमात्यों की नियुक्ति राजा द्वारा योग्यता के आधार पर करनी चाहिए। अर्थशास्त्र में अमात्य और मंत्री इन दो शब्दों का कही पर साथ–साथ तो कही पर अलग–अलग प्रयोग किया गया है । कुछ स्थानों पर अमात्यों को मुख्यमंत्री के रुप में प्रस्तुत किया गया है, तो कहीं पर उन्हे मंत्रियों के नीचे भी रखा गया है। कौटिल्य के मतानुसार अमात्य को दूरदर्शी, बुद्विमान, प्रतिभाशाली तथा राजा के प्रति वफादार होना चाहिए।

3. जनपद या प्रादेशिक क्षेत्र :

कौटिल्य ने अपने सप्तांगों में जनपद को राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग माना है। उन्होने जनपद की कोई स्पष्ट परिभाषा

नही दी। तथापि जनपद के माध्यम से कौटिल्य ने भूमि और जनता दोनो को ही राज्य क्षेत्र का आवश्यक अंग माना है । कौटिल्य का मत है कि जनपद इतना समृद्व होना चाहिए कि वह कर अदा कर सके तथा उसकी जनता राजा के प्रति वफादार और उसके आदेशो का पालन करने वाली हो।

4. दुर्ग या किलाः

कौटिल्य ने जनपद की तरह ही दुर्ग अथवा किले को भी राज्य के चौथे अंग के रुप में महत्वपूर्ण माना है। दुर्ग राज्य की आक्रामक तथा प्रतिरक्षात्मक योग्यता का प्रतीक होता है। कौटिल्य के मतानुसार दुर्ग चार प्रकार के होते है जैसे औदक दुर्ग (जल से घिरा हुआ), पर्वत दुर्ग (पहाडी पर स्थित), वन दुर्ग (वनों से घिरा हुआ), धान्वन दुर्ग (रेगिस्तान से घिरा हुआ)। कौटिल्य के मतानुसार औदिक एवं पर्वत दुर्ग संकटकाल में जनपद की रक्षा करने में सहायक होते है जबकि धान्वन और वन दुर्ग, जगलों की रक्षा करने तथा विपत्ति के समय राजा की भी रक्षा करने में सहायक सिद्ध होते है।

5. राजकोष :

राज्य के पाँचवें अंग के रुप में कौटिल्य ने राजकोष की आवश्यकता पर बल दिया। कौटिल्य ने सर्वाधिक ध्यान राजकोष पर देने का समर्थन किया, क्योंकि उनका यह मत था कि सभी उद्यम वित्त पर ही निर्भर होते है अतः राज्य की सभी सम्पत्ति जिसमें राजा को उपहार स्वरुप मिला हुआ धन भी शामिल है उसको अंकेक्षित किया जाना चाहिए।

6. दण्ड या सेना :

कौटिल्य ने राज्य और जनता की रक्षा के लिए एक सुसंगठित सेना का समर्थन किया है । कौटिल्य के मतानुसार सेना को शक्तिशाली एव देशभक्त होना चाहिए। राजा की सफलता की कुँजी सेना में ही निहित होती है। कौटिल्य ने चार प्रकार की सेना का वर्णन किया है, जो हाथी सेना, रथ सेना, अश्व सेना और पैदल सेना है। इन सभी सेनाओं का प्रधान सेनापति अर्थात् सर्वोच्च कमाण्डर राजा को होना चाहिए।

7. मित्र :

राज्य के सातवें अंग के रूप में कौटिल्य ने मित्र की महत्ता को स्वीकार किया है । राज्य की सुरक्षा के लिए मित्र का होना अति आवश्यक है, क्योंकि संकट की स्थिति में मित्र ही राज्य की सहायता कर सकता है। कौटिल्य के मतानुसार प्रत्येक राज्य के स्थायी मित्र होने चाहिए।

कौटिल्य के द्वारा उपर्युक्त वर्णित सप्तांग राज्य के गुणों के रूप में भी प्रयुक्त किये जाते है। कौटिल्य का मानना है कि राज्य के ये सातों अंग अन्तरसंबंधित हैं। इन सात अंगों से युक्त राज्य की कल्पना कौटिल्य ने की थी और राज्य को एक जीवित शरीर के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था । यही कारण है कि कौटिल्य के राज्य सप्तांग सिद्धान्त को राज्य का सावयव सिद्धान्त भी कहा जाता है।

केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था :

आचार्य कौटिल्य ने विजीगीषु सम्राट के सम्पूर्ण राज्य के प्रशासन तंत्र का विस्तृत वर्णन, विश्लेषण अर्थशास्त्र में किया है। केन्द्रीय प्रशासन में आचार्य ने सम्राट (शासक), मंत्रीपरिषद्, मंत्रिगण, अमात्यों, विभागाध्यक्षों, युक्त, उपर्युक्त व तत्पुरूष जैसे राज्य कर्मचारियों का उल्लेख किया है। इसमें गुणों , योग्यता, नियुक्ति, कार्यो, वेतनमानों का भी वर्णन किया है। इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :

राज्य (शासक) :

कौटिल्य नें राज्य संस्था में राजा को सर्वोपरि स्थान दिया। राजा को उन्होंने कूटस्थानीय (केन्द्रीय) भूमिका प्रदान की। राजा ही जनपदों को विजय कर साम्राज्य में वृद्धि करता है, अमात्यों , अध्यक्षों की नियुक्ति करता है। कोष, दुर्ग, सेना की सुव्यवस्था करता है, वैदेशिक सम्बन्धों द्वारा मित्र बनाता है। शत्रुओं का विनाश करता है राजकोष, जनता राजपुरूषों, पर आई विपत्ति का प्रतिकार करता है एक आदर्श व्यक्ति ही कूटस्थानीय होकर राज्य की रक्षा कर सकता है, साधारण व्यक्ति नहीं।

राजा की योग्यता व गुण :

कौटिल्य के अनुसार राजा उसी जनपद का मूल निवासी हो। ऊँचे कुल का हो। दैवीय, बुद्धियुक्त, धार्मिक, वृद्धजनों की बातें सुनने वाला, चरित्रवान एवं उद्यमशील हो। वह दीर्घपूँजी न हो, परस्पर विरोधी बातें न करता हो, सामन्तों पर प्रभाव रखने वाला तथा बुद्धि, बल , प्रतिभा व स्मरणशक्ति में विशिष्ट हो। इसके अलावा विनय (नियन्त्रण में रहने वाला), उग्र दोषों से रहित, दूरदर्शी व सभी शिल्पों में निपुण हो।

उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त आदर्श राजा की प्राप्ति सरल कार्य नहीं है, इसलिए आचार्य ने यह कहा की इसके लिये विद्याविनीत (शिक्षा व विनय) प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति में उत्तम गुणों का विकास किया जा सकता है। बचपन से ही शिक्षा एवं नियन्त्रण रखकर आदर्श राजा बनाया भी जा सकता है। उसमें इन्द्रियजयी गुण साधना द्वारा विकसित किये जा सकते है।

राजा विजिगीषु (विजय की इच्छा रखने वाला) प्रवृति का हो । विभिन्न शास्त्रों यथा दण्डनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्म, सैन्य, शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिये। वह अपनी रक्षा के प्रति हमेशा सजग रहे क्योंकि वह सम्पूर्ण राज्य का आधार बिन्दु है, तथा उसका जीवन राष्ट्र व जनता की अमानत है। कौटिल्य मत था कि राजा उद्यमशील हो, आदर्शवादी हो तभी जनता उद्यमशील, सुखी व सम्पन्न होगी। कौटिल्य का राजा प्लेटो के दार्शनिक राजा की तरह महात्मा या आदर्शवादी न होकर यर्थाथवादी व कल्याणकारी है।

राजा के कर्त्तव्य :

कौटिल्य ने क्रमबद्ध तरीके से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन नहीं किया है, यत्र तत्र राजा के कर्त्तव्य व अधिकारों का उल्लेख किया है। राजा के अधिकार व कर्त्तव्य निम्नलिखित है।

1. प्रजा की रक्षा करना।
2. राज्य की सुरक्षा व विस्तार करना
3. धर्म की स्थापना व रक्षण करना
4. जनकल्याण करना।
5. शांति व्यवस्था बनाये रखना
6. न्याय व दण्ड व्यवस्था करना
7. कर का संग्रह करना।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रजा की रक्षा करना ही उसका परम कर्त्तव्य नहीं है, वरन् उनका मुख्य उद्देश्य ''योगक्षेम'' की स्थापना करना है। योगक्षेम अर्थात जो नहीं है उसको प्राप्त करना और जो है उसकी रक्षा करना।

मंत्रिपरिषद् की आवश्यकता :

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजकीय कार्यों के तीन प्रकार बतायें है। प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा अनुमेय। प्रत्यक्ष कार्य, वे कार्य जो अपने सम्मुख हो, परोक्ष वे कार्य जो दूसरे बतायें तथा अनुमेय कियें हुये कार्य से न किये हुयें कार्यों का अनुमान करना है। एक शक्तिशाली राजा भी समस्त कार्य स्वयं नहीं कर सकता हैं । अतः उसकी सहायता के लिए अमात्यों की नियुक्ति की आवश्यकता होती है। ये उसको राज्य कार्य में परामर्श भी देते हैं, और राज्य कार्यों को सम्पादित भी करते हैं। कौटिल्य ने यह भी कहा कि विविध समयों, विविध स्थानों, और विविध कार्यों के लिए अमात्यों या सचिवों को नियुक्त किया जाए ।

मंत्री परिषद् का संगठन :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को अपने सम्पूर्ण राज्य की सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था के लिये एक मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें सदस्यों की संख्या के लिये उनका विचार था कि ''यथा सामर्थ्य '' अर्थात् कार्य करने वाले पुरूषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए। मंत्री परिषद् में होने वाली मन्त्रणा अत्यन्त गोपनीय होनी चाहिए।

मन्त्रिण :

कौटिल्य अर्थशास्त्र में मन्त्रि परिषद् के साथ ही एक छोटी उपसमिति का भी उल्लेख किया है इन्हें ''मंन्त्रिण'' कहा गया है। शीघ्र निर्णय लेने वाले विषयों पर इनसे परामर्श लिया जाता था। इनकी संख्या तीन या चार ही होती थी। इस प्रकार शासक प्रायः अपने मन्त्रिगण व मंत्रिपरिषद् के परामर्श से ही राज्य कार्य का संचालन किया करता था।

अमात्यः

कौटिल्य के अनुसार मंत्री व अमात्य दो अलग–अलग पद थे। कौटिल्य ने लिखा है कि–''राजा को चाहिए की यथोचित गुण, देश, काल और कार्य की व्यवस्था को देखकर वह सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तियों को अमात्य बना सकता है, किन्तु सहसा ही उनको मंत्री परिषद् में नियुक्त न करें।'' इससे स्पष्ट है कि मंत्री और अमात्य दो भिन्न –भिन्न पद थे और अमात्य की अपेक्षा मंत्री का पद बड़ा था। कदाचित यह बात रही होगी कि मंत्री, मंत्री परिषद् का सदस्य भी होता था और राजा को सुझाव भी दे सकता था जबकि अमात्य मंत्री परिषद् का सदस्य तो होता था किन्तु उसको मंत्री पद प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।

अध्यक्ष : राज्य में समाहर्त्ता व सन्निधता अमात्यों के अधीन कई विभाग व गृह थे। इनके विभागीय प्रमुखों को अध्यक्ष कहा गया है। समाहर्त्ता के अधीन 20 अध्यक्ष थे। ये अपने अपने विभागों के राजकीय करों का एकत्रीकरण करते थे तथा राज्य के लोक उपक्रमों (कारखानों) जो उद्योगों , व्यापार व व्यवसाय से संबंधित थे, उनका भी संचालन करते थे।

सन्निधाता के अधीन निम्न विभाग थे। 1. कोशगृह (बहुमूल्य वस्तुओं का संग्रह) 2. पण्यगृह (राजकीय कर्मान्तों में तैयार माल का संग्रह) 3. कोष्ठगार (आवश्यक सामग्री का संग्रह), 4 . कुप्य गृह (वन सम्पदा का संग्रह), 5. आयुधागार (अस्त्र–शस्त्रों का संग्रह) 6. बन्धनागार (जेल)।

अन्य राज्य कर्मचारी :

मौर्यो के शासन में महामात्यों और अध्यक्षों के अधीन बहुत से अनेक राज्य कर्मचारी भी कार्य करते थे जिनके लिए ''युक्त'' , ''उपयुक्त'' तथा ''तत्पुरूष'' नाम दिया गया है।

कार्मिक प्रशासन :

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में योगवृत निरूपण नामक अधिकरण में राज्य कर्मचारियों के कर्त्तव्यों व अपराधों के दण्ड देने के नियमों का वर्णन किया है। इसके अध्यायों में कर्मचारियों के भरणपोषण, वेतनमान, व्यवहार, नियम पालन आदि का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने प्रशासनिक अधिकारियों के लिये प्रशासनिक कार्य सिद्धान्तों, भर्ती प्रक्रिया, नियुक्ति, पदसोपान, वेतनमान, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही, स्थानान्तरण, अवकाश एवं भ्रष्टाचार की रोकथाम के उपायों का वर्णन किया है।

कौटिल्य के प्रशासन में राज्य को मन्त्रणा की आवश्यता क्यों होती है, इसके निम्न चार कार्य सिद्धान्त बतलाये है।

1. इससे कार्य प्रारम्भ करने के उपाय (पद्धति, नियोजन तथा संगठन) प्राप्त होते हैं ।
2. आवश्यक कार्मिक, धन, संसाधन के सम्बन्ध में विचार हो जाता है।
3. स्थान व समय, सम्भावित बाधाओं का अनुमान लग जाता है।
4. प्रतिकार की रीति नीति निर्धारित की जा सकती है।

भर्ती प्रणाली :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रत्येक अधिकारण के अधिकारी की योग्यताओं का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने उच्च अधिकारियों की शिक्षा, योग्यता व कौशल पर अधिक बल दिया है। आधुनिक लोकप्रशासन के अनेक विद्वान जैसे हेनरी फेयोल भी उनका अनुसरण करते भी प्रतीत होते हैं।

कौटिल्य ने चार प्रकार की विधायें जैसे – अन्विक्षिकी (आध्यात्म, दर्शन, तर्क) त्रयी (धर्म, अधर्म, इतिहास, वेदों का ज्ञान) वार्ता (कृषि, व्यापार व अर्थशास्त्र का ज्ञान) दण्डनीति (शासन कला व राजनीति का ज्ञान) का विषद विवेचन किया है। उनके अनुसार राजा व युवराज को ये चारों विधाओं का ज्ञान होना चाहिये अन्य सेवाओं के लिये भी उन्होंने कार्यानुसार योग्यतायें बतायी हैं। भर्ती के लिये प्रत्यक्ष साक्षात्कार, परोक्ष परीक्षा (दूसरों से उसके बारे में पूछकर) कार्य पर परीक्षण व परीक्षा या उपायों द्वारा परख का उन्होंने समर्थन किया है।

धर्मोपद्या अर्थात् धर्म की परीक्षा से ह्रदय की पवित्रता, **अर्थोपद्या** अर्थात् धन का लालच देकर, **कामापद्या** अर्थात् काम, गुप्त प्रवृतियों के द्वारा आचरण की शुद्धता की, **भयोपद्या** अर्थात् भय के उपायों से शुचिता की परीक्षा की जाती थी। आचार्य ने कहा है कि जो धर्मोपद्या उत्तीर्ण कर ले वह न्यायालय में अर्थोपद्या उत्तीर्ण को सन्निधाता , अथवा समाहर्ता का पद, कामापद्या उत्तीर्ण करने वाले अमात्य को अन्तपुर रक्षक व भयोपद्या वाले को अंगरक्षक नियुक्त करा जाये । जो चारों परीक्षा में खरा उतरे वही अमात्य मन्त्रिणगण बनाया जाये।

पदसोपान :

पद सोपान सिद्धान्त पर उस काल में वेतनमान का निश्चयीकरण किया गया था। कौटिल्य का मानना था कि राज्य द्वारा कार्मिकों को उतना वेतन अवश्य मिले की वे जीवन सरलता से व्यतीत करें तथा उनकी अभिप्रेरणा स्तर न गिरे। राजा पद क्रम में सर्वोच्च व केन्द्रीय प्रबन्धक स्थिति पर था।

वेतनमान : इससे पद क्रम में **प्रथम स्तर** मन्त्री, पुरोहित, युवराज आदि थे इनका वेतनमान 48000 पण थे। **द्वितीय स्तर** पर समाहर्ता आदि थे जिनका वेतन 24000 पण था। **तृतीय स्तर** पर दण्डपाल, नायक आदि थे। इनको 12000 पण मिलते थे। निम्नतम वेतनमान 60 पण के लगभग पशु व मनुष्यों के परिचारकों का था। कर्मचारियों को उनके कार्यो व पदानुसार वेतन दिया जाता था।

पदोन्नतिः

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को चाहिये कि गुप्तचरों की सहायता से ईमानदार कार्मिकों का पता लगाकर पुरस्कृत करें, कर्त्तव्य विमुख कार्मिकों को दंडित करें। दण्ड, अपराध सिद्ध होने पर तथा दोष की प्रकृति के अनुसार, निर्धारित होता था। कौटिल्य ने कर्मचारियों के लिये आचार संहिता का निर्माण किया था। राजा व अन्य उच्चाधिकारियों के सामने अधिनस्थ के शालीन व उत्तम व्यवहार की विस्तृत व्याख्या है। नियमविरूद्ध व्यवहार पर पदावनति की बात भी की है।

स्थानान्तरण व अवकाश :

कौटिल्य स्थानान्तरण का पूर्ण समर्थन नहीं करते थे। वे इसको दण्डस्वरूप प्रयोग करने की बात करते है। उनकी मान्यता है कि राजमहल, विभागों व राज्य के सीमान्त रक्षकों का स्थानान्तरण नहीं किया जाना चाहिए। कौटिल्य अवकाश के विरोधी थे किन्तु अस्वस्थ होने व विशिष्ट कारण पर अवकाश दिया जा सकता था।

कौटिल्य कालीन वित्तीय प्रशासन एवं वित्तीय व्यवस्था :

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने तात्कालीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक सिद्वान्तों के साथ ही उन विषयों का भी गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है जो धन (वित्त) से सम्बन्ध रखते हैं । कौटिल्य ने राज्य के सप्तांग सिद्धान्त के अन्तर्गत वर्णित सात प्रकृतियों (अंग) में भी कोष (धन) को प्रमुख स्थान दिया है । कौटिल्य का मत यह है कि एक सशक्त एवं सुशासित राज्य के लिए स्वामी (राजा), दुर्ग (जनपद) अमात्य (कार्मिक वर्ग) के साथ ही सम्पन्न कोश (धन) और बल (सेना) परम आवश्यक है। कौटिल्य ने राज्य की जिन आर्थिक नीति का उल्लेख किया है उसमें तीन सिद्धान्तों को प्रमुखता दी है। ये तीन सिद्धान्त निम्नलिखित है –

1. सार्वजनिक उद्योगों से सम्बन्धित सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त के अनुसार वे उद्योग जिस पर राज्य का अस्तित्व निर्भर करता है। उनका संचालन राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। इन उद्योगों में लगाई गई पूँजी, उनका श्रम, और सम्पूर्ण प्रबन्ध राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रकार कौटिल्य ने मूल उद्योगों पर राज्य के प्रत्यक्ष स्वामित्व को स्वीकार किया है। इस क्षेत्र में नागरिकों को निजी पूँजी लगाने का कोई अधिकार नहीं दिया गया । मुख्य उद्योगों को राजकीय नियन्त्रण में रखने का मूल आधार सम्भवतः एक सशक्त राज्य का निर्माण रहा होगा। इन मूल उद्योगों में प्रमुखतः सूत्र उद्योगों (वस्त्र उद्योग) आकार उद्योग (खनन उद्योग) आयुध उद्योग (हथियार उद्योग), मुद्रा उद्योग (टकसाल उद्योग) सुराद्योग (शराब उद्योग) कुप्य उद्योग (वन उत्पाद उद्योग) इत्यादि सम्मिलित थे।

2. निजी क्षेत्र सम्बन्धित सिद्धान्त :

इस सिद्धान्त के अनुसार जनता इस क्षेत्र में आने वाले उद्योगों पर अपनी पूँजी, अपना श्रम और अपना प्रबन्ध लगा सकती है। इस प्रकार इन उद्योगों का संचालन उसी (जनता) के द्वारा किया जाता है। इस श्रेणी में आने वाले उद्योगों पर व्यवस्थापकों का एक मात्र अधिकार पाया गया है। ऐसे उद्योगों में खेती, सूत, शिल्प, गौ पालन, अश्व पालन, हस्ति पालन, गायन–वादन आदि की गणना की जा सकती है।

3. नियन्त्रण सम्बन्धित सिद्धान्त :

कौटिल्य की अर्थ नीति का तीसरा सिद्धान्त समाज में ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से सम्बद्ध है जिसके अनुसार राज्य के समस्त उत्पादन (Production), वितरण (Distribution), और उपभोग (Consumption) पर शासन का नियन्त्रण बना रहेगा। उक्त सभी उद्योगों तथा व्यवसायों पर राज्य का स्वामित्व (State ownership) इसलिए माना गया कि राज्य का अर्थबल सशक्त बना रहे और समाज के सभी वर्ग क्रियाशील बने रहें।

वित्तविभाग का संगठन :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से मोर्य साम्राज्य के केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित प्रमुख तथ्यों का विस्तृत ज्ञान ग्रहण होता है। मौर्ययुग में जनपद के विविध अधिकरणों (विभागों) का भी उल्लेख किया गया है। इनके अधिकारयों की संज्ञा ''तीर्थ'' थी। मोर्य प्रशासन में इन अधिकारियों (तीर्थों) की संख्या अठारह थी। इन अठारह तीर्थो में से चार तीर्थों (अधिकरणों) का सम्बन्ध वित्त विभाग से था । इन चार तीर्थों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

1. समाहर्त्ता :

मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न जनपदों के लिए नियुक्त अमात्यो (राजपुरूषों) को जहाँ समाहर्ता कहते थे, वही केन्द्रीय शासन का भी एक अधिकरण (तीर्थ/विभाग) समाहर्त्ता के अधीन था। समाहर्त्ता का अधिकरण राजकीय आय और व्यय की व्यवस्था करता था। राजकीय करों को एकत्र करना इस अधिकरण का सर्वप्रधान कार्य था।

समाहर्त्ता को यह देखना होता था कि कौन से कार्य, हाथ में हैं, कौनसे कार्य सिद्ध हो चुके हैं तथा कौनसे कार्य शेष हैं, कितनी आय है, कितना व्यय है, और कितनी विशुद्ध आमदनी है। समाहर्त्ता के कार्यों का कौटिल्य ने इस प्रकार उल्लेख है : वह राजकीय आय को एकत्र करें , आय में वृद्धि करें, व्यय में कमी करें तथा इसके विपरीत न होने दे। समाहर्त्ता के अधीन अनेक अध्यक्ष होते थे, जो अपने–अपने विभाग के राजकीय करों को एकत्र करते थे और ऐसे व्यापार, व्यवसाय व उद्योगों का संचालन करते थे, जो राज्य के स्वामित्व के अधीन थे।

सन्निधाता :

वित्त विभाग के अन्तर्गत ही समाहर्त्ता के बाद दूसरा प्रमुख अधिकारी सन्निधाता के नाम से जाना जाता था। ये अमात्य राजकीय कोश की देखभाल करने वाला प्रधान अधिकारी था। वह कोशगृह, पुण्यगृह, कोष्ठागार, कुप्यगृह, आयुधागार एवं बन्धनागार, (जेल) का निर्माण करा उनकी देखभाल करता था। कोशगृह के निर्माण के विषय में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में गूढ़ एवं विस्तृत वर्णन किया है। सन्निधाता के अधीन भी अनेक उपविभागों की सत्ता थी इनमें है :

1. कोशगृह (कोशाध्यक्ष के अधीन)
2. पुण्यगृह (पुण्याध्यक्ष के अधीन)
3. कोषागार (कोषागाराध्यक्ष के अधीन)
4. आयुध्यागार (आयुधागाराध्यक्ष के अधीन)
5. बन्धनागार (बन्धनागाराध्यक्ष के अधीन)

अक्षपटलाध्यक्ष (अकाउंट जनरल) : यह अमात्य प्रशस्ता अधिकरण (राजकीय आज्ञाओं को लिपिबद्ध करने सम्बन्धित विभाग) के अधीन कार्य करता था। इसको विभिन्न निबन्धपुस्तकों (रजिस्टरों) की देखभाल का कार्य सौंपा गया था। यह अमात्य निबन्ध–पुस्तकस्थान (कार्यालय) में विभिन्न राजकीय निबन्ध पुस्तकों को रजिस्टर्ड करता था। इसके अधीन बहुत से कार्यवाही कार्य करते है इन्हें गाणनिक्य, कारणिक, संख्यामक, कार्मिक आदि कहा जाता है।

कार्मातिक :

मौर्य युग में राज्य की और से अनेक उद्योगों का संचालन किया जाता था। इसके लिए बहुत से कर्मान्त (कारखाने) स्थापित किए जाते थे। खानों, जंगलों, खेतों आदि से एकत्र कच्चे माल को भिन्न–भिन्न उपयोगों के लिए तैयार माल में परिवर्तित करने के लिए राज्य की ओर से जो विविध कारखाने स्थापित थे, उनका संचालन एवं नियन्त्रण कार्मातिक के अधिकरण द्वारा किया जाता था।

राजकीय आय–व्यय की व्यवस्था :

कौटिल्य ने राज्य की आय –व्यय के साधनों के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। अर्थशास्त्र में राजकीय आय के सात स्त्रोत या साधन बतलाये है। कौटिल्य ने इन्हीं को आय–शरीर नाम से सम्बोधित किया है। इनसे किस प्रकार राज्य आमदनी प्राप्त करता है, इस सम्बन्ध में भी कतिपय निर्देश अर्थशास्त्र में विद्यमान है। ये राजकीय आय के सात साधन है : दुर्ग, राष्ट्र, खनिज, सेतु, वन, व्रज और वार्णिक पथ। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दुर्ग और ''राष्ट्र'' और शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है और राज्याधीन आय रूप के प्रसंग में वे पारिभाषिक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुये है।

राजकीय व्यय :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय व्यय व्यवस्था के बारे में भी विस्तृत वर्णन किया गया है। इस व्यय के 22 प्रकार बताये गये है। कौटिल्य ने इन सबको ''व्यय शरीर'' की संज्ञा दी है। इन 22 वर्गों में से सैन्य प्रशासन पर व्यय होने वाले करीब पाँच वर्ग है ये वर्ग निम्नांकित है – आयुधागार, पंक्ति (पैदल सेना) अश्वपरिग्रह (घुडसवार सेना) द्विप परिग्रह (हस्तिसेना) और गोमण्डल (सेना का माल ढोने के लिए बैल इत्यादि पशु।) इससे स्पष्ट होता है कि मौर्य प्रशासन में सेना पर राजकीय आमदनी का बड़ा भाग खर्च किया जाता था। कौटिल्य ने राजकीय प्रशासन में कार्यरत राजकीय कर्मचारियों के वेतनमानों का उल्लेख भी किया है जो यह स्पष्ट करता है कि राजकीय व्यय का एक बड़ा हिस्सा राजकीय कर्मचारियों के वेतनमान पर व्यय किया जाना था।

भ्रष्टाचार की समस्या व रोकथाम :

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में अधिकरण दो के अध्याय आठ व नौ में वित्तकोष के खाली होने के कारणों व उसमें कर्मचारियों की भूमिका, उनमें वित्तीय अपराधों पर जुर्माने व भ्रष्टाचार के करीब चालीस प्रकारों का उल्लेख किया है।

भ्रष्टाचार के ये रूप आज भी न्यूनाधिक रूप में मौजूद है। कौटिल्य कहते है अर्थात् जिस प्रकार जीभ पर रखे हुये शहद या विष के सम्बन्ध में न चाहते हुए भी स्वाद आ ही जाता है। ठीक उसी प्रकार राजा के अर्थ सम्बन्धी कार्यो पर नियुक्त कार्मिक उस धन का थोड़ा सा भी स्वाद न ले यह सम्भव नहीं है। वे थोड़े बहुत धन का अपहरण अवश्य करते है। इसी प्रकार कौटिल्य एक और तर्क देते है, अर्थात् जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछलियाँ कब पानी पीती है, दिखाई नहीं देती है, उसी प्रकार अर्थ कार्यों पर नियुक्त कार्मिक, अर्थ का अपहरण करते हुये प्रतीत नहीं होते है। कौटिल्य ने कहा है कि आकाश में उड़ते पक्षियों की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना सरल है किन्तु धन का अपहरण करने वाले कार्मिकों की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना कठिन कार्य है।

कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के निदान के लिये निम्न उपाय सुझायें थे :

1. भ्रष्टाचार की समाप्ति का अंकुश लगाने के लिये राजा या सम्बन्धित विभाग का अमात्य सहायक अधिकारी, भण्डार अधिकारी, लेखा अधिकारी, सलाह देने वाले व भ्रष्टाचार कार्य में सहायक व्यक्तियों से व्यक्तिगत पूछताछ करते थे। गलती सिद्ध हो जाने पर जुर्माने व दण्ड की व्यवस्था थी।
2. राजा द्वारा भ्रष्टाचार की जाँच व समाप्ति के लिये निगरानी और जाँच समिति का गठन किया जा सकता था।
3. राजा के द्वारा राज्यादेश निर्गत किया जा सकता था कि सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहृत करने वाले भ्रष्टाचारी के कुकृत्यों का भेद देने वाले व्यक्ति को पुरस्कार स्वरूप अपहृरत धन का एक चौथाई भाग प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।
4. सार्वजनिक सम्पत्ति के समीप रहने वाले पदाधिकारियों पर राजा द्वारा विशेष गुप्तचरों को लगाया जा सकता है।
5. समय समय पर निरीक्षण द्वारा अमात्य भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण कर सकते थे।
6. प्रशासन को भ्रष्टाचार मुक्त रखने के लिये कौटिल्य ने प्रशासनिक पदाधिकारियों के स्थानान्तरण का प्रावधान भी किया था।
7. कौटिल्य ने भ्रष्टाचार प्रभावित होने पर पदाधिकारियों के लिये दण्ड का प्रावधान किया ताकि वे पुनः भ्रष्टाचार में लिप्त न हो। कौटिल्य ने भ्रष्टाचार को रोकने के लिये राजा द्वारा मृत्युदण्ड दिये जाने की सिफारिश की है।

कौटिल्य ने भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त प्रशासन में सत्य निष्ठा की स्थापना हेतु

योग्य पदाधिकारियों को पुरस्कार देने की बात की है। इससे स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार मुक्त प्रतिबद्ध एवं लक्ष्यान्मुख प्रशासन की स्थापना के लिये आचार्य ने बहुत ही व्यापक, व्यावहारिक, कानूनी व मनोवैज्ञानिक प्रयास किया है।

न्यायव्यवस्था :

अर्थशास्त्र में न्याय व कानून व्यवस्था का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। आचार्य कौटिल्य समुचित न्याय को राज्य का प्राण मानते है। राजा यदि अपनी प्रजा को न्याय प्रदान नहीं करता है तो वह नष्ट हो जाता है न्याय का उद्देश्य प्रजा के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा करना तथा असामाजिक तत्वों को दण्डित करना है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में न्याय प्रदान करने के लिये कानून के चार स्त्रोत बताये है :

1. धर्म 2. व्यवहार
3. चरित्र 4. राजशासन।

कौटिल्य ने इनको स्पष्ट करते हुये स्वयं कहा है ''धर्म का आधार सत्य है, व्यवहार साक्षियों पर आधारित है, मनुष्यों में परम्परागत रूप से चले आये नियम चरित्र कहलाते है। और राजा द्वारा प्रसारित आज्ञायें राजशासन है।

अर्थशास्त्र के अनुसार विवादों का निर्णय इन चतुष्पाद कानूनों द्वारा होता था। राजशासन का न्यायालय की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व था। कौटिल्य प्रमुख विचारक थे जिन्होने राजा को कानून का स्त्रोत माना और राज्य के वैधानिक कानून को मान्यता दी। राजाज्ञा को चरित्र व व्यवहार से ऊपर मान्यता दी। धर्म (वर्तमान का औचित्य) के आधार पर तब ही निर्णय किया जाता था जबकि सम्बन्धित विवाद पर कोई राजकीय आदेश, चरित्र व व्यवहार न हो। कौटिल्य की न्याय व्यवस्था के अनुसार राज्य के सभी व्यक्ति एक समान है। न्याय राजा व याचक दोनों के लिये समान है। राजा भी जाति, श्रेणी, कुल, जनपद में संघों में जो चरित्र (परम्परागत कानून) चले आ रहे है उनका अतिक्रमण नहीं कर सकता था।

दण्ड नीति : अर्थशास्त्र में दण्डनीति के सन्दर्भ में निम्न व्याख्या की गई है :

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में पक्षपातपूर्ण न्याय करने या निर्दोष को दण्ड देने पर न्यायकर्ता को दुगुने दण्ड का भागी बताने की बात की है। इस सम्बन्ध में कौटिल्य ने प्राचीन शास्त्रों के इस सिद्धान्त का अनुकरण किया है –

दण्डः शासित प्रजाः सर्वा दण्ड स्वाधिराहाति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डः धर्म विपुषुधाः ।।

अर्थात् दण्ड प्रजा का शासन करता है, दण्ड ही रक्षा करता है, जब सभी सो रहे होते हैं तब दण्ड ही जागता है। बुद्धिमानों ने दण्ड को ही धर्म कहा है। आमजन को मत्स्य न्याय से बचाने के लिये कौटिल्य ने साधारण व कठोर, मौद्रिक व शारीरिक, सामाजिक (अपमान), राजनीतिक (देश निकाला) कई प्रकार के दण्ड वर्णित किये है। कौटिल्य ने ब्राह्मण, स्त्री बालक को कम दण्ड देने का प्रावधान किया है। कौटिल्य राजा से अपेक्षा करते है कि वह अपराध समान होने व सिद्ध होने पर पुत्र एवं शत्रु को बराबर दण्ड दें।

परराष्ट्र नीति एवं सिद्धान्त :

कौटिल्य ने प्रशासन के अन्तर्गत परराष्ट्र नीति व उसके संचालन का भी विस्तार से वर्णन किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का छठा और सातवाँ अधिकरण मुख्यतः इन्हीं तथ्यों से सम्बन्धित है। अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण में मण्डल सिद्धान्त तथा सातवें अधिकरण में षाडगुण सिद्धान्त का वर्णन मिलता है।

मण्डल का शब्द तात्पर्य '' राज्यों का वृत्त'' से है कौटिल्य ने अपने इस सर्वप्रमुख सिद्धान्त की रचना आर्यावर्त के अनेक राज्यों को ध्यान में रखकर की है यह सिद्धान्त एक राजा को विजय की आंकाक्षा रखने वाला समझकर उसके चतुर्दिक अन्य राज्यों के मण्डल की रचना करता है। इसमें प्रत्येक राज्यों के साथ सम्बन्ध कैसा होना चाहिए तथा एक दूसरे राज्य से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए इत्यादि का वर्णन मिलता है। मण्डल सिद्धान्त का सार है ''शत्रु का शत्रु मित्र होता है''।

कौटिल्य ने मण्डल में राज्यों की कुल संख्या बारह बतायी है इन बारह राज्यों की अपनी अलग स्थिति, पहचान तथा वैदेशिक नीति है, इनको स्पष्ट करके ही मण्डल सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से समझा जा सकता है – सर्वप्रथम, मण्डल के बारह राज्यों में विजिगीषु राजा का नाम सबसे पहले आता है। जिसको केन्द्र मानकर कौटिल्य ने मण्डल या मण्डल सिद्धान्त की रचना की है । विजिगीषु राजा वह राजा है जो अपने राज्य के विस्तार की आकांक्षा रखता है तथा राज्य के विस्तार के लिए विभिन्न प्रकार के उपायों का सहारा लेता है। इस प्रकार, विजिगीषु राजा महत्वाकांक्षी होता है। इसका स्थान मण्डल में मध्य में होता है। मण्डल का दूसरा राज्य 'अरि' है और विजिगीषु राज्य के सामने की ओर होता है। तथा विजिगीषु का शत्रु होता है। फ्रांस और जर्मनी, पोलैण्ड और रूस तथा चीन और जापान का द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व के सम्बन्ध को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। मण्डल का तीसरा राज्य मित्र है जो अरि के सामने होता है। इसके नामकरण का कारण प्रथम और मध्य में स्थापित विजिगीषु राज्य से इसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का होना है। विजिगीषु और मित्र राज्यों को एक दूसरे को सहायता करने पर कौटिल्य जोर देते है। वर्तमान में, अफगानिस्तान के साथ भारत की मित्रता को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। मण्डल का चौथा राज्य ''अरिमित्र'' कहलाता है जो मित्र के सामने वाला राज्य होता है। अरिमित्र अरि का मित्र परन्तु विजिगीषु का शत्रु होता है। अरिमित्र का सम्बन्ध प्रथम राज्य विजिगीषु और तृतीय राज्य 'मित्र' से अच्छा नहीं होता जबकि 'अरि' से जो मण्डल में द्वितीय राज्य है, से मित्रता का सम्बन्ध होता है। पाँचवाँ ''अरिमित्र'' के सामने वाला राज्य ''मित्र–मित्र'' कहलाता है। क्योंकि वह मित्र राज्य का मित्र होता है और इसलिए अरि राज्य के साथ भी उसका सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होता है।

मण्डल का सातवाँ राज्य पार्ष्णिग्रह कहलाता है जो विजिगीषु के पीछे का राज्य है। अरि के तरह वह भी विजिगीषुका शत्रु ही होता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि इस राज्य का सम्बन्ध विजिगीषु राज्य के आगे वाले राज्य से अरि से बेहतर होता है । मण्डल के आठवें राज्य का नाम ''आक्रंद'' है जो पार्ष्णिग्रह के पीछे रहता है। यह विजिगीषु का मित्र लेकिन पार्ष्णिग्रह का शत्रु होता है। मण्डल का नवाँ और आंक्रद के पीछे वाला राज्य ''पार्ष्णिग्रहसार'' है, जो पार्ष्णिग्रह का मित्र होता है।

स्पष्ट है कि वह आंक्रद का शत्रु होगा। मण्डल का दसवाँ और पार्ष्णिग्रह के पीछे अवस्थित राज्य ''आंक्रदसार'' कहलाता है। और वह आंक्रद का मित्र होता है । मण्डल का ग्यारहवाँ और विजिगीषु तथा अरि राज्यों की सीमा से संलग्न राज्य 'मध्यम' राज्य कहलाता है। वह विजिगीषु और दोनों से अधिक शक्तिशाली होता है। मण्डल का बारहवाँ राज्य उदासीन कहलाता है। जो विजिगीषु और उसके शत्रु के मध्य कहीं भी अवस्थित रहता है। युद्ध के समय वह पूर्ण तटस्थ रहता है तथा सर्वोच्च शक्तिशाली राज्य होता है।

अब कौटिल्य के ''मण्डल सिद्धान्त'' के अध्ययनोपरान्त कुछ तथ्य उजागर होते है – **पहला** यद्यपि मण्डल शब्द बारह राज्यों के समूह के एक वृत्ताकार क्षेत्र की ओर संकेत करता है तथापि उन राज्यों के स्थान की कल्पना एक सीधी रेखा में की जा सकती है। **दूसरी** बात यह है कि उदासीन राज्य युद्ध से अलग रहकर ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। उसके राज्यों की वृत्त में सर्वाधिक शक्तिशाली होने का राज युद्ध जैसी विनाशकारी प्रवृत्ति से अपने को अलग रखना है । **तीसरी** बात यह है कि मध्यम और उदासीन राज्य को छोड़कर मण्डल के अन्य सभी राज्यों की शक्ति प्रायः समान होती है। इस प्रकार मण्डल समान शक्ति वाले राज्यों का एक समूह होता है जो दो विरोधी गुट में विभक्त रहता है। एवं जहाँ एक गुट का नेता समस्त मण्डल पर सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास करता है । **चौथी** बात यह है कि संख्या बारह से यह नहीं समझना चाहिए कि मण्डल के निर्माण बारह राज्यों का होना ही आवश्यक है, उससे कम या अधिक भी राज्यों की संख्या हो सकती है। वस्तुतः काल और परिस्थिति इसके अतिरिक्त के अनुरूप राज्यों की संख्या में परिवर्तन (न्यूनता या अधिकता) हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन राज्यों का जो नामकरण किया गया है वे सभी नाम परिस्थिति के अनुसार बदल सकते है। एक ही राज्य परिवर्तित स्थिति में अरि, मित्र या विजिगीषु कोई भी बन सकता है।

निष्कर्ष : में यह कहा जा सकता है कि मण्डल सिद्धान्त कौटिल्य की वैदेशिक नीति सम्बन्धी सूझ–बूझ और व्यवहारिक राजनीति में उनकी दक्षता का परिचायक है। वस्तुतः यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की मौलिक वास्तविकताओं पर आधारित है।

शाड्गुण सिद्धान्त :

कौटिल्य ने षाड्गुण सिद्धान्त या वैदेशिक नीति सिद्धान्तों का वर्णन अर्थशास्त्र के सप्तम अधिकरण में किया गया है। कौटिल्य एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ हैं। जिन्होंने वैदेशिक नीति सिद्धान्तों को राज्य की सुरक्षा, अखण्डता और स्वतन्त्रता के लिए परम आवश्यक माना है ये षाड्गुण सिद्धान्त छह प्रकार के है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

1. सन्धि : कौटिल्य के युग में सन्धि का वैदेशिक नीति के रूप में महत्वपूर्ण स्थान था जो वर्तमान सन्धियों के स्वरूप से भिन्न है। राज्य की दुर्बलता के कारण सन्धि की नीति अपनायी जाती है।

2. विग्रह : यहाँ विग्रह का अर्थ शत्रुता है। इस सिद्धान्त को राज्य अपने बचाव एवं दूसरे राज्य पर आक्रमण के सन्दर्भ मं अपनाता है । कौटिल्य का कहना है कि जब राज्य यह समझे कि वह शत्रु राज्य के मुकाबले में विजयी हो सकता है तो सन्धि की नीति को त्यागकर विग्रह की नीति अपनानी चाहिए।

3. आसन : यहाँ आसन का अर्थ है अपने आपको युद्ध से अलग रखकर चुपचाप बिना किसी प्रतिक्रिया के बैठ जाना। राजा आसन की नीति तब अपनाता है जब वह यह समझता है कि वह इतना समर्थ नहीं है कि शत्रु को हानि पहुँचा सके। बल्कि शत्रु ही इतना प्रबल है कि वह उसको हानि पहुँचा सकता है।

4. यान : शत्रु पर आक्रमण करने की तैयारी का नाम यान है। जब राजा शत्रु की अपेक्षा निश्चित रूप में अधिक शक्तिशाली होता है, तभी वह इस नीति का अनुसरण करता है।

5. संश्रय : संश्रय का अर्थ शरण प्राप्त करना है, यह नीति दुर्बलता का प्रतीक है। यदि राजा शत्रु की अपेक्षा अपने को दुर्बल समझाता है एवं प्रबल शत्रु उस पर आक्रमण करता है या आक्रमण करने की धमकी देता है, तो वह किसी अन्य राजा की शरण ले सकता है, परन्तु राजा को सही राज्य में शरण लेनी चाहिए। जो शत्रु की तुलना में अधिक बलवान हो एवं जो उसका प्रिय भी हो।

6. द्वैधीभाव : द्वैधीभाव का अर्थ एक राज्य से सन्धि एवं दूसरे से विग्रह करना होता है, कौटिल्य ने भी स्पष्ट कर दिया है। कि द्वैधीभाव नीति के अनुसार , विजिगीषु को शक्तिशाली राजा के साथ सन्धि और कमजोर राजा के साथ विग्रह नीति अपनानी चाहिए। स्पष्टतः इस नीति का उद्देश्य शत्रु का क्षय करना एवं अपनी शक्ति की वृद्धि करना है।

कौटिल्य ने विदेश नीति के संचालन के उपर्युक्त छ' सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य चार उपाय भी बताये है – साम,दाम, भेद और दण्ड। साम–मैत्री सम्बन्धी दृष्टिकोण का नाम है जिसमें राजा समझा बुझाकर अपने राज्य हित को प्राप्त करता है। दाम की नीति के द्वारा राजा शत्रु पक्ष के राजद्रोहियों को अपनी ओर कर सकता है। भेद – फूट डालने की नीति एवं प्रक्रिया है जिससे भी शत्रु राज्य के पदाधिकारियों में मतभेद उत्पन्न किया जाता है। उपर्युक्त तीनों उप सिद्धान्तों की विफलता की स्थिति में दण्ड के प्रयोग का सुझाव कौटिल्य के द्वारा दिया गया है। दण्ड से तात्पर्य – राज्य द्वारा दूसरे राज्य को युद्ध व अन्य कूटनीति व्यवहार से दण्डित करना है।

कौटिल्य के सुशासन सम्बन्धी विचार :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भी सुशासन की अवधारणा की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अर्थशास्त्र में वर्णित सुशासन के दस निर्धारक (Indicators) तत्व किसी भी पश्चिमी सुशासन सम्बन्धित अवधारणाओं से बहुत आगे एवं श्रेष्ठ हैं । यह पोस्ट विल्सोनियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (Post Wilsonian Public administration) से अधिक आधुनिक है। राजशाही एवं विधिक रूप से चर्चित असमानता के उस युग में केवल **कौटिल्य ने राजा को राज्य का सेवक कहा है।** वह भी उन सेवकों के समकक्ष ही था, जो उसके अधीनस्थ थे। लोकतंत्र के इस युग में भी तृतीय विश्व के देशों के लिए यह अपूर्व सुझाव है । कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित दस निर्धारक (Ten Indicators) तत्व इस प्रकार है :

1. राजा अपने व्यक्तिगत हित को अपने कर्तव्यों के साथ सम्मिलित कर दे (King must marge his individuality with duties)
2. सुनिर्देशित प्रशासन (A Properly guided administration)
3. अतिरेकता से दूर रहते हुए लक्ष्यों को न भूलना (Avoiding Extremes without missing the goal)
4. राजा एवं अधिकारियों के लिए अनुशासित जीवन एवं आचार व्यवहार के नियम (Disciplined life with the code of conduct for king and ministers)
5. राजा एवं लोक सेवकों के लिए निश्चित वेतन एवं भत्ते (Fixed salaries and allowances to the king and public servants)
6. राजा का मुख्य कर्तव्य कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना है(चोरी एवं वस्तु निर्माण में हुए नुकसान की पूर्ति राजा के वेतन से हो) (Law and order chief duty of the king - Theft losses to be made good from king's salary)
7. भ्रष्ट अधिकारियों से बचने एवं उनके प्रति दण्डात्मक कार्यवाही करना (Carrying out preventive & punitive meansures against corrupt officials)
8. राजा द्वारा मंत्रियों के स्थान पर अन्य विशेषज्ञों को नियुक्त करना (Replacement of ministers by good ones by the king)
9. प्रशासनिक मूल्यों के अनुकरण को बढ़ावा। (Emulation of Administrative qualities)
10. अस्थिरता के समय भी सुशासन बनाये रखना। (Persuing good governance even amidst instability)

प्रान्तीय व स्थानीय शासन प्रबन्ध :

अर्थशास्त्र में प्रांतीय प्रशासन प्रबन्ध की व्याख्या की गई है। इसमें इनके संगठन, शासक वर्ग, कर्मचारियों व कार्यों का वर्णन मिलता है । चाणक्य के काल में चन्द्रगुप्त मौर्य का विजीत साम्राज्य तीन भागों में जिसे चक्र भी कहते हैं, विभाजित था। ये उतरापथ, पश्चिमी चक्र व मध्यप्रदेश के नाम से जाने जाते थे। इनके निर्माण का आधार भौगोलिक था या राजनीतिक इस बारे में कुछ स्पष्ट नहीं है। इन चक्रों के अधीन कई मण्डल आते थे जो देश कहलाते थे। ये देश ही वर्तमान के प्रान्तों की भांति प्रशासकीय संरचना थी । इन प्रान्तों में प्रमुख शासक राजकुल का होता था यह कुमार कहलाते थे। ये कुमार अनेक महामात्यों की सहायता से कार्य करते थे। शासन व्यवस्था एवं सुख सुविधा की दृष्टि से समग्र राष्ट्र को दो भागों में विभाजित किया गया था : पुर और जनपद। पुर से उनका अभिप्राय नगर , दुर्ग या राजधानी से था और जनपद से शेष सारे राष्ट्र से। राज्य की सात प्रकृतियों में जनपद और दुर्ग (पुर) को इसीलिए अलग माना है।

जनपद :

शासन सुविधा की दृष्टि से ही मण्डल या देश को जनपदों में विभक्त किया गया था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य के सप्तांग सिद्धान्त में राज्य की प्रकृतियों में से एक जनपद भी है। जनपद का निर्माण ऐसे ग्रामों से होता था। जिसमें 100 से 500 कुल परिवार निवास करते है। इन जनपदों को शासन सुविधा से अनेक विभागों में विभाजित किया जाता था। ये विभाजन व ग्रामों की संख्या व उनके नाम इस प्रकार है –

1. **स्थानीय** : यह 800 ग्रामों ये युक्त होता था इसका शासक स्थानीय कहलाता था।
2. **द्रोणमुख** : इसमें 400 ग्राम होते थे।
3. **खार्वटक** : इसके अन्तर्गत 200 ग्राम आते थे।
4. **संग्रहण** : इसमें 10 ग्राम आते थे। संग्रहण का शासक गोप होता था।
5. **ग्राम** : ये शासन की सबसे छोटी इकाई थी। इसका प्रमुख ग्रामिक होता था।

जनपदों की जनसंख्या करीब चार से 20 लाख होती थी। ये वर्तमान के जिला मुख्यालयों की तरह थे। इन जनपदों की रक्षा के लिये सीमाओं पर अन्तःपालों की संरक्षा में, दुर्ग का निर्माण किया जाता था जिससे शत्रु न आ सकें उसके बाद आटविक जातियां ओर बाद में पुर (राजधानी) की स्थापना की जाती थी। जिसकी रचना दुर्ग की तरह थी। यह न केवल जनपद की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र होता था, अपितु जनपद की रक्षा इसी पर आश्रित थी। पुर की संरचना व उसके किस किस भाग में क्या हो इसकी अर्थशास्त्र में विस्तृत व्याख्या की गई है।

ये जनपद प्राचीन ग्रीक के पोलिस (Polis) व प्राचीन इटली के सिविटास (Civitas) तरह के छोटे नगर राज्य थे। इसकी शासन पद्धति एक समान नहीं होती थी जनपद के सम्पन्न नागरिक, राजपुरूष, शिल्पियों के निवास स्थान व व्यापारियों के निगम व अधिष्ठान आदि पुर (राजधानी) में ही होते थे। इन जनपदों में प्रायः एक जन (जाति) का निवास होता था। उनके नाम पर ही जनपद का नाम होता था। बहुत से शूद्र भी इनमें निवास करते थे । यह जन के कुलों की भूमि पर खेती का कार्य करते थे। अनेक जनपदों में पौर व जानपद जैसी संस्थाये मौजूद थी। जनपद में पुर (राजधानी) का शासन में महत्वपूर्ण स्थान था। पुर की सभा की संज्ञा पौर थी यह राजधानी की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का संचालन करती थी । जानपद, जनपद की वह सभा थी जिसमें जनपद के विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित होते थे। सम्पूर्ण, जनपद का प्रधान समाहर्त्ता होता था। इन जनपदों में कोई जनपद ऐसे भी थे जो आंतरिक शासक में स्वतंत्र थे। जिनके धर्म, चरित्र व्यवहार व शासन संस्थायें पूर्ववत कायम थी। ये शासन की दृष्टि से अपनी पृथक सत्ता रखते थे। यह स्थिति ढाई हजार वर्ष बाद भी भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों के विशेष दर्जा प्राप्त करने व दार्जिलिंग की क्षैत्रीय परिषद् के रूप में मौजूद है।

पुर (राजधानी) :

पुर या नगर का प्रमुख शासक नागरिक था। इनकी नियुक्ति केन्द्र सरकार की ओर से की जाती थी। पुर का सबसे छोटा भाग 10 या 20, या 40 परिवारों के निवास स्थानों से

मिलकर बनता था। इनके अधिकारी को गोप कहते है। ये केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति होता है। ये अपने क्षेत्र में निवास करने वाले सब स्त्री पुरूषों के नाम, गोत्र ओर जाति को जानता था कि वे क्या पेशा करते थे ? उनकी आमदनी क्या है ? कितना खर्च है ? यह जानकारी रखता था। गोप के उपर का पदाधिकारी स्थानिक होता था। यह पुर के चतुर्थ भाग का शासक होता था। इस प्रकार नागरिक के अधीन पुर के चारों स्थानिक होते थे तथा स्थानक के अधीन गोप होता था । केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थानिक की नियुक्ति की जाती थी। नगर की सफाई रखना भी नागरिक का कर्त्तव्य था। नगर की जनता की स्वास्थ्य रक्षा को कोई हानि नहीं पहुँचे इसके लिये आवश्यक था की नागरिक एवं उसके कर्मचारी उदक स्थान (जलाशय,कुँआ) का निरीक्षण करें। नगर के जान माल की रक्षा भी नागरक का कर्त्तव्य था। चिकित्सकों पर भी नागरिक का नियन्त्रण था।

महत्वपूर्ण बिन्दु :

1. आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना लगभग 321 से 323 ईसा पूर्व के लगभग की थी।
2. अर्थशास्त्र में 15 अधिकरण, 180 प्रकरण, 150 अध्याय एवं 6000 श्लोक है।
3. कौटिल्य ने राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था तथा राज्य के दैवीय सिद्धान्त का समर्थन किया है।
4. कौटिल्य द्वारा राज्य के सप्तांग सिद्धान्त (राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, राजकोष, दण्ड (सेना) और (मित्र) को बताया गया है।
5. कौटिल्य ने प्रशासनिक अधिकरणों की भर्ती, नियुक्त, पदसोपान, वेतनमान, तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही का विस्तार से वर्णन किया है।
6. अर्थशास्त्र के अनुसार वित्तीय प्रशासन में समाहर्त्ता एवं सन्निधाता के पदों को महत्वपूर्ण माना है।
7. कौटिल्य ने विदेशनीति के सम्बन्ध में मण्डल सिद्धान्त, षाड़गुण्य नीति का उल्लेख किया।
8. षाड़गुण्य नीति में सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय, द्वैधीभाव सम्मिलित है।
9. कौटिल्य ने स्थानीय प्रशासन की इकाईयाँ क्रमशः स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटक, संग्रहण तथा ग्राम बतलाई है।
10. कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सुशासन के सिद्धान्तों को भी वर्णित किया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न :

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कुल कितने अधिकरण है ?
   (अ) 22 (ब) 15
   (स) 10 (द) 8
2. राज्य के सप्तांग सिद्धान्त में कौनसी प्रकृति सम्मिलित नहीं है ?
   (अ) दण्ड (ब) जनपद
   (स) मित्र (द) आसन
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र में कानून के चार स्त्रोतों में सर्वाधिक महत्व किसे दिया गया है ?
   (अ) राज शासन (ब) चरित्र
   (स) व्यवहार (द) धर्म
4. निम्न में से कौनसी स्थानीय प्रशासन की इकाई नहीं है?
   (अ) द्रोणमुख (ब) खार्वटक
   (स) संग्रहण (द) कारणिक
5. कौटिल्य के षड़गुण सिद्धान्त में निम्न में से क्या सम्मिलित है ?
   (अ) सन्धि (ब) विग्रह
   (स) यान (द) उपरोक्त सभी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. वैराज्य से आप क्या समझते है ?
2. सन्निधाता के अधीन कोई दो विभाग बताइए।
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित कानून के चार स्त्रोत बताइए।
4. विजीगीषु राजा किसे कहा गया है ?
5. षाड़गुण्य सिद्धान्त के कोई दो तत्व बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त के सात अंग बताइए।
2. कौटिल्य ने राजा के क्या प्रमुख कर्त्तव्य बताये है ?
3. कौटिल्य कालीन व्यवस्था में भर्ती के लिए कौनसी विधाये काम में ली जाती थी ?
4. कौटिल्यकालीन दण्डनीति को समझाइए।
5. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सुशासन सम्बन्धित कोई पाँच निर्धारक तत्व बताये।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. कौटिल्य के कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी विचारों की व्याख्या कीजिए।
2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित परराष्ट्र नीति से सम्बन्धित सिद्धान्तों की व्याख्या करें।
3. कौटिल्य कालीन केन्द्रीय प्रशासनिक तन्त्र व्यवस्था को समझाइये।

उत्तरमाला :

1. (ब) 2. (द) 3. (द)
4. (द) 5. (द)